श्रृंखला – एक

# मृतात्माओं की खोज...

## (मृत्यु के बाद का जीवन )

'सूक्ष्म और स्थूल' के विखंडन के उपरान्त, व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। भौतिक जगत् में 'स्थूल' का अन्तिमं संस्कार मृत व्यक्ति के परिजन और उससे जुड़े लोग अपने – अपने धर्म/सम्प्रदाय के अनुसार कर देते है। लेकिन इसी कम में कोई भी व्यक्ति यह क्यों नहीं सोचता कि उस मृत व्यक्ति के 'सूक्ष्म' का क्या हुआ होगा। – यह सब आध्यात्मिक क्षेत्र से जुड़े विज्ञजनों के लिए अतिविचारणीय और शोधपरक् बिन्दु है।

सूक्ष्म तात्विक वैज्ञानिक दृष्टि से यह लगभग शतप्रतिशत निश्चित है कि 'सूक्ष्म –स्थूल' के विखंडन के उपरान्त मृत व्यक्ति का 'सूक्ष्म' किसी न किसी रूप में आध्यात्मिक ऊर्जा से सम्बद्ध हो जाता है। इस कम में यह भी निश्चित सा लगता है कि वह सूक्ष्म, 'सूक्ष्म – स्थूल' के संयोजन के कम में पुनः मानव जीवन से जुड़ता है।– यह आध्यात्मिक शोधकर्ता के लिए एक रहस्यमय विषय वस्तु है।

प्रकृति के 'सृष्टि और विनाश' के कम में 'सूक्ष्म – स्थूल' के संयोजन और विखंडन को भी मानव संरचना और विध्वंस के कम में जोड़ा जा सकता है। क्योंकि जिस परिवार में 'पिता – पुत्र, पति – पत्नी, भाई – बहन, या अन्य सगे सम्बन्धी' के मध्य किसी व्यक्ति के 'सूक्ष्म – स्थूल' का विखंडन होता है तो उन सबके मध्य एक कयामत सा दृश्य उत्पन्न हो जाता है। विध्वंस – चाहे छोटा हो या बड़ा, उससे कोई न कोई प्रभावित होगा ही। विध्वंस के इसी कम को यदि एक एक करके विस्तृत किया जाय तो वह सामूहिक कम छोटे बड़े विध्वंस का आकार लेने लगेगा। – यह आध्यात्मिक शोधकर्ता के लिए एक रहस्यमय शोध का विषय है।

अब प्रश्न यह उठता है कि वह 'सूक्ष्म' जो किसी मानव के 'सूक्ष्म – स्थूल' के विखंडन के उपरान्त उससे अलग – थलग होकर कतिपय आध्यात्मिक ऊर्जा से सम्बद्ध हो गया है; क्या वह पुनः 'सूक्ष्म – स्थूल' के संयोजन के कम में किसी मानव या जीव की रचना करने में सक्षम होगा? क्या वह किसी न किसी रूप में 'पुनर्जन्म' की अवधारणा को सत्यापित करेगा ? – यह भी आध्यात्मिक शोधकर्ता के लिए एक रहस्यमय शोध का विषय है।

आध्यात्मिकता के अन्तर्गत इस रहस्यमय विषय को लेकर निम्न तीन सम्भावनाएं हो सकती हैं –

1.सम्पूर्ण विलोप – जो लोग आत्मा की अमरता पर विश्वास नहीं करते, वे इस मत का प्रतिपादन करते हैं। प्राचीन भारत में भी कुछ लोग मृत्युपरान्त आत्मा के अतिजीवन में शंकाएं रखते थे।

मृत्यु के उपरान्त वाला अतिजीवन सम्बन्धी प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण है। क्या भौतिक शरीर की मृत्यु के उपरान्त, व्यक्ति का कोई चिन्ह बचा रहता है। श्वेताश्वतरोपनिषद ने इस सम्बन्ध में निम्न समस्यायुक्त सम्भावनाएं व्यक्त की हैं –

1.क्या ब्रह्म ही कारण है?

2. हम कहां से आते हैं?

3. हमें कौन पालता है?

4. हम कहां जा रहे हैं?

उपरोक्त समस्यायुक्त सम्भावनाओं को देखते हुए बहुत कम लोग सम्पूर्ण नाश वाले सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। इससे मनुष्य की कामनाओं से विरोध उठ खड़ा होता है। व्यक्ति सोचता है कि – उसने इस जीवन में जो कुछ मानसिक और आध्यात्मिक रूप में कमाया है वह बिना कुछ चिन्ह छोड़े सर्वथा विलुप्त नहीं हो सकता।

2. स्वर्ग या नरक में अनन्त प्रतिकार– जो लोग ईश्वर, स्वर्ग और नरक में विश्वास करते हैं, उनमें बहुत से लोग आत्मा के पूर्वास्तित्व में विश्वास नहीं करते, वे केवल उत्तरास्तित्व में विश्वास करते हैं।

उनका यह विश्वास है कि – यदि व्यक्ति इस जीवन में सदाचारी है तो उसे स्वर्ग में आनन्द का जीवन प्राप्त होगा। इसके साथ – साथ उनका यह भी विश्वास है कि– यदि व्यक्ति इस जीवन में पापमय जीवन बिताता है तो वह मृत्यु के उपरान्त नरक में सदा के लिए निवास करेगा।

बाईबिल और कुरान आदि में विश्वास करने वाले उपरोक्त मत से अक्सर असहमत रहते हैं। उनकी दृष्टि में 'सुकृत' केवल ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखने में है।

लेकिन उपरोक्त मत से अधिकांश लोग सहमत नहीं हैं। उनमें से अधिकांश की सोच यह है कि – जीवन तो अल्प होता है और उसी में किए गये सत्कर्मों और दुष्कर्मों के लिए मृतात्मा को स्वर्ग या नरक में अनन्तकाल तक वास करना पड़ता है। यह बात कहीं न कहीं विवादास्पद हो सकती है।

3. पुनर्जन्म – इसके अन्तर्गत, व्यक्ति के भौतिक मृत्यु के उपरान्त किसी न किसी रूप में विविध वातावरणों में आत्मा के सतत् अस्तित्व का विविध रूप में संकेत मिलता है।

'याज्ञवल्क्य' ने दृढ़ता पूर्वक कहा है कि – अपने कर्मों के फलस्वरूप ही मनुष्य नये जन्म ग्रहण करता है।

पूर्व धर्म सूत्रकारों और कतिपय धर्माचार्यो ने 'पुनर्जन्म' के सम्बन्ध में सामान्यतः 'देवयान और पितृयान' – नामक दो मार्गों की चर्चा की है।

'छान्दोग्योपनिषद्' में आया है कि – 'जो लोग यज्ञ करते हैं, जन कल्याण का कार्य करते हैं तथा दान देते हैं वह 'चन्द्रलोक' जाते हैं और जब उनके सत्कर्मों का फल समाप्त हो जाता है तो वे उसी मार्ग से लौट आते हैं जिससे वे 'चन्द्रलोक' गये थे और पुनः किसी माता के पेट से जन्म लेते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता हैं कि – जो लोग यज्ञ आदि करते हैं उन्हें दो प्रतिकार मिलते हैं – 'पहला – ऐसे लोग लम्बे समय/काल तक चन्द्रलोक' में निवास करते हैं और दूसरा – इस पृथिवी पर पुनर्जन्म लेते हैं।

व्यक्ति के भौतिक शरीर के नष्ट हो जाने के बाद की यथार्थ परक् सम्भावनाओं को संक्षेप में निम्न क्रम में समझा जा सकता है –

1.आरम्भिक क्रम में मिस्र देश के प्रबुद्ध निवासियो ने ऐसा कहा और विश्वास किया है कि – मानव आत्मा अमर है और शरीर की मृत्यु हो जाने पर वह किसी अन्य जीवित शरीर में जो जन्म लेने वाली होती थी, उसमें प्रवेश कर जाता है।

2.पैथागोरस ने इस पर विश्वास किया और उनके साथ – साथ एम्पीडाकिल्स और प्लेटो ने भी आत्मा के पुनर्जन्म और उत्तर जन्म में विश्वास किया है । केनथ वाकर के ग्रंथ (दि सर्किल आफ लाइफ , पृ0 93 ) में इसका उल्लेख मिलता है।

3. गफ (फिलासफी आफ उपनिषद्, पृ0 सं0 : 29–31) ने प्रतिपादित किया है कि उपनिषदों के पूर्व वैदिक साहित्य में पुर्नजन्म की बात नहीं पायी जाती है। हो सकता है हिन्दुओं ने इस सिद्धान्त को आदिवासियों से ग्रहण किया होगा।

4. जी0 डब्लू0 ब्राउन के ग्रंथ (स्टडीज इन आनर आव ब्लूमफील्ड, पृ0 : 76–88) के अनुसार – यदि पुर्नजन्म का सिद्धान्त मिस्रवासियों या अन्य आदिवासियों में पाया जा सकता है तो ऐसी कल्पना के लिए कोई तर्क नहीं है कि इस सिद्धान्त का प्रतिपादन स्वयं भारतीयों ने नहीं किया। इसके साथ यह भी सच है कि विश्व में 'कर्म और पुर्नजन्म' का सिद्धान्त इतना विस्तृत रूप में नहीं पाया जाता है जितना 'संस्कृत साहित्य' में विद्यमान है।

उपरोक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए 'पुनर्जन्म' के अस्तित्व को भौतिकता के आधार पर नकारा नहीं जा सकता है।

कतिपय दर्शनों (यथा – सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक और वेदान्त आदि) ने एक दूसरे के सिद्धान्तों की कड़ी आलोचनाएं की हैं किन्तु उन्होंने 'कर्म और पुनर्जन्म'

सिद्धान्त को एक स्वर से स्वीकार किया है। 'कर्म और पुनर्जन्म' सम्बन्धी सभी विश्वासों के साथ कुछ सम्भावनाएं और ऊहापोह को निम्न क्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1.मनुष्य का एक आत्मा होता है जो नित्य और भौतिक शरीर से पृथक है।

2. पशुओं, औषधियों (पौधे आदि), और सम्भव निर्जीव पदार्थों में भी आत्मतत्व होता है।

3. मनुष्य और निम्नस्तर के पशुओं का आत्मा एक भौतिक शरीर से दूसरे में प्रविष्ट हो जा सकता है।

4. आत्मा कर्म करने वाला और दुःख सहने वाला होता है।

शतपथब्राह्मण (11/6/1/3–6) में एक ऐसी कथा का उल्लेख है जो जीव के कुकृत्य और सत्कर्मों को 'पुनर्जन्म' के क्रमिक क्रम को निम्न क्रम में प्रस्तुत करता है –

'भृगु के पिता वरुण ने अपने को पूर्ण विद्वान समझने वाले पुत्र (भृगु) को चारो दिशाओं में पूर्व से उत्तर तक जाने को कहा और और लौट आने पर देखी हुई सभी घटनाओं का विवरण मांगा। सभी दिशाओं में भृगु को भयंकर दृश्य देखने को मिले, पूर्व में उन्होंने लोगों को एक दूसरे को छिन्न भिन्न करते देखा, एक एक कर हाथ उखाड़ते यह कहते सुना कि – 'यह तुम्हारे लिए, यह मेरे लिए।' उन्होंने कहा 'यह भयंकर है।'उन लोगों ने कहा, 'इन लोगों ने हमारे साथ, सामने के लोक में किया, अतः हम लोग प्रतिकार में ऐसा कर रहे हैं।' इसी क्रम में उन्होंने उत्तर में देखा कि चिल्लाते और रोते हुए लोगों द्वारा चिल्लाते और रोते हुए लोग पीटे जा रहे हैं। जब उन्होंने कहा, 'यह तो भयंकर/भीषण है' तो उन लोगो ने उत्तर दिया, 'इन लोगों ने हमारे साथ ऐसा ही..... यह प्रतिकार है।' – सम्भवतः यह कथा 'जैसे को तैसा' – कहावत चरितार्थ करती है।

'शतपथब्राह्मण' के काल में यह अवधारणा बन चुकी थी कि – जो व्यक्ति एक जीवन में दुष्कृत्य करता है वह दूसरे जीवन में उसी व्यक्ति द्वारा, जिसका अनभल वह किए रहता है, दुष्कृत्य का उत्तर अथवा प्रतिकार पाता है।

शत0 ब्रा0 (10/4/4/9) में आया है – 'जो व्यक्ति विद्या और पवित्र कर्मों द्वारा अमर होना चाहता है, वह इस शरीर से अलग होने के उपरान्त अमर हो जायेगा।' इसी क्रम में शत0 ब्रा0 (10/4/4/10) में आया है – 'जो व्यक्ति पवित्र कर्म करते हैं, वे पुनः मृत्यु के उपरान्त इस जीवन में आते हैं और अमर जीवन प्राप्त करते हैं। किन्तु वहीं जो लोग पवित्र कर्म नहीं करते हैं, वे मरने के उपरान्त पुनर्जन्म प्राप्त करते तो हैं लेकिन मृत्यु का भोजन बार – बार बनते हैं।

'शतपथब्राह्मण' इस निष्कर्ष पर पहुंच गया था कि मनुष्य की इच्छा पर ही यह निर्भर है कि उसे मृत्यु के उपरान्त कौन सा लोक प्राप्त होगा। उसे ब्रह्म समझकर सत्य

का ही ध्यान करना चाहिए। जब वह पुरूष ही अधिकतर इच्छा है और अपनी इच्छा के अनुसार ही जब वह इस लोक से चलेगा तो सामने के लोक में भी वैसी इच्छा रखेगा।

शत0 ब्रा0 (10/1/5/4) में आया है – जो व्यक्ति नियमित रूप से अग्निहोत्र करता है वह परलोक में प्रातः और सायं भोजन करता है। इसी कम में दर्श और पूर्णमास को अग्निहोत्र करने वाला प्रत्येक पक्ष में भोजन करता है, चातुर्मास्यों को करने वाला चार मासों के उपरान्त भोजन करता है, पशु यज्ञ करने वाला प्रत्येक छह मास पर भोजन पाता है, सोमयज्ञ करने वाला एक वर्ष के उपरान्त भोजन करता है, अग्निचयन वेदिका का निर्माण करने वाला प्रत्येक सौ वर्षों पर इच्छा के अनुसार भोजन करता है या एक बार खा लेने पर खाने की आवश्यकता नहीं समझता है।

'शतपथब्राह्मण' अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मन के अनुसार निर्मित अपने लोक में जन्म लेता है। उसने यह दृढ़तापूर्वक व्यक्त किया है कि जो देवों के लिए यज्ञ करता है वह उस लोक को नहीं प्राप्त करता है जिसे आत्मा के लिए यज्ञ करने वाला पाता है और आत्मा के लिए यज्ञ करने वाला व्यक्ति अपने शरीर से, पाप से, उसी प्रकार मुक्ति पाता है जिस प्रकार सर्प अपने केचुल से पाता है (11/226 / 13–14)।

प्रो0 आर0 डी0 रानाडे ने अपने ग्रंथ (कांस्ट्रक्टिव सर्वे आफ द उपनिषदिक फिलासफी, पृ0 संख्या – 145–146) ने ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों पर निर्भर होकर यह कहने का प्रयास किया है कि वैदिक ऋषियों ने पुनर्जन्म की ओर संकेत किया है (पृ0 147)। किन्तु उन्होंने यह भी माना है कि 'ऋग्वेद' के अधिकांश भाग में 'पुनर्जन्म' की भावना का सर्वथा अभाव है।

जिस किसी से मनुष्य का मन और सूक्ष्म देह संलग्न रहता है उसी के पास अपने कर्मों के फलों के साथ वह जाता है, और जो कुछ कर्म वह इस लोक में करता है उसका फल प्राप्त करने के उपरान्त वह पुनः उस लोक से कर्मलोक में जाता है – यह सब उसके लिए है जो कामयमान है।

जो व्यक्ति काम रहित है, निष्काम है, जिसके काम शान्त हो गये हैं, जो स्वयं आत्मकाम है उसके प्राण कहीं और नहीं जाते, वह स्वयं ब्रह्म होने के कारण ब्रह्मलीन हो जाता है।

(विशेष – 'कामयमन' और 'कामरहित' उपरोक्त दोनों वक्तव्य प्रामाणिकता के अभाव में भी एक सीमा तक सही प्रतीत होते हैं।)

बृहदारण्यकोपनिषद् (6/2) एक कथात्मक वक्तव्य आया है जिसका संक्षिप्त उल्लेख निम्नक्रम में प्रस्तुत है –

'अरुणी के पुत्र श्वेतकेतु अपनी विद्या के प्रचंड अहंकार से युक्त पंचालों के सभा भवन में आये और वहां नौकरों द्वारा सेवा पाते हुए प्रवाहण जैवलि को देखा। श्वेतकेतु को देख लेने के उपरान्त राजकुमार जैवलि ने उनसे पूछा – 'क्या आपने अपने पिता से शिक्षा पायी है ?' सकारात्मक उत्तर 'हां' मिलने पर जैवलि ने उनसे निम्न पांच प्रश्न किए –

1. क्या आप यह जानते हैं कि जब मनुष्य यहां से जाते हैं तो वे किस प्रकार विभिन्न दिशाओं को जाते हैं ?

2. क्या आप यह जानते हैं कि वे किस प्रकार यहां लौट आते हैं ?

3. क्या आप यह जानते हैं कि सामने वाला लोक किस प्रकार बहुत लोगों द्वारा बार – बार जाने पर भी नहीं भर पाता है ?

4. क्या आप यह जानते हैं कि किस कृत्य की आहुति पर जल मानव वाणी से मुक्त हो जाते हैं, उठ पड़ते हैं और बोल उठते हैं?

5. क्या आप देवयान और पितृयाण नामक मार्गों की पहुंच को जानते हैं ?

किसी भी प्रश्न का उत्तर न देने की स्थिति में वह (श्वेतकेतु) राजकुमार जैविलि के आतिथ्य को स्वीकार किए बिना ही अपने पिता के पास लौट गये और जब उनसे उन प्रश्नों का उत्तर जानना चाहा तो उन्होंने भी उन प्रश्नों के उत्तर को लेकर अनभिज्ञता दिखाई।

पिता और पुत्र दोनों राजकुमार जैवलि के पास गये और पांचों प्रश्नों का उत्तर जानना चाहा। राजकुमार ने श्वेतकेतु को पांचों प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में निम्न क्रम में दिया –

1–5: पहले और पांचवें प्रश्न का उत्तर निम्न क्रम में है – 'कुछ लोग देवों के मार्ग से, कुछ लोग पितरों के मार्ग से जाते हैं किन्तु अन्य (यथा – कीड़े – मकोड़े और पक्षियां आदि) लोगों के लिए कोई मार्ग नहीं है (वे केवल जीते हैं और मर जाते हैं) । बृ0 उप0 (6/2/15–16)।

2–3: दूसरे और तीसरे प्रश्न का उत्तर निम्न क्रम में है – 'जो लोग पितृयाण से जाते हैं वे इस पृथिवी पर लौट आते हैं और जो ब्रह्म के पास जाते हैं वे लोग लौटकर नहीं आते हैं, इसी से वह लोक भर नहीं पाता हैं।

4.'पांच अग्नियां (लाक्षणिक) हैं – स्वर्ग, वर्षा के देव, पृथिवी, पुरुष और नारी और पांच आहुतियां हैं – श्रद्धा, सोम (चन्द्र) , वर्षा, अन्न और बीज। (चौथे प्रश्न का उत्तर)।

( विशेष– उपनिषद् वचन यह प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त किस प्रकार उपनिषद् काल में अपना स्वरूप धारण कर रहा था।)

ऋग्वेद में देवयान और पितृयान नामक मार्ग ज्ञात थे और यह भी विदित था कि स्वर्ग में आनन्द और सुख प्राप्त होता है, लेकिन ऋग्वेद से यह नहीं पता चल पाता है कि स्वर्ग के आनन्द की क्या अवधि थी और न ही वहां 'पुनर्जन्म' के सैद्धान्तिक पक्ष सम्बन्धी कोई स्पष्ट संकेत मिलता है।

ब्राह्मण ग्रंथों में दोनो मार्गों (देवयान और पितृयान) की ओर बहुधा संकेत किया गया है और इसका भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि मनुष्य को कई – कई बार मरना होगा ( पुनर्जन्म ) , किन्तु सत्कर्मों और दुष्कर्मों पर आधारित 'पुनर्जन्म' के विषय में कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं मिलता है।

'छान्दोग्योपनिषद्' (5/10/5) में आया है कि जो मनुष्य यज्ञ करते हैं, जन कल्याण का कार्य करते हैं और निरंतर दान आदि देते हैं, वह मरने के बाद 'चन्द्रलोक' जाते हैं और जब उनके सत्कर्मों के फल समाप्त हो जाते हैं तो वे उसी मार्ग से लौट आते हैं जिससे वे चन्द्रलोक गये थे और पुनः किसी माता के पेट से जन्म लेते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जो लोग यज्ञ और धार्मिक सुकृत्य करते हैं, उन्हें दो प्रतिकार मिलता है –'पहला – लम्बे समय तक 'चन्द्रलोक' में निवास और दूसरा – पृथिवी पर ' पुनर्जन्म'।

(विशेष – कतिपय उपनिषदों में 'सूर्यलोक' के निवास की बात निम्न क्रम में आयी है– 'संवत्सर वास्तव में प्रजापति का है, इसके दो मार्ग हैं – उत्तरी और दक्षिणी। जो लोग यज्ञ तथा जन कल्याण का कार्य आवश्यक समक्षकर सम्पादित करते हैं वे चन्द्रलोक को ही अपने भावी लोक के रूप में प्राप्त करते हैं और वे ही ' पुनर्जन्म' के क्रम में इस लोक को पुनः लौट आते हैं।

जो ऋषि सन्तान की कामना करते हैं, वह दक्षिणी मार्ग को अपनाते हैं। जो ऋषि तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और ज्ञान के द्वारा आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं वे उत्तरी मार्ग से सूर्य की ओर जाते हैं, जो प्राणों का आवतन है, अमृत है और भयमुक्त है, वह सर्वोच्च और अन्तिम लक्ष्य है। यहां से वे लौटते नहीं, यहां अन्य पदार्थों के लिए निरोध है।)

कौषीतकि उप0 (1/2–3) ने देवयान और पितृयान का उल्लेख तो किया है किन्तु कीड़ों – मकोड़ों और पक्षियों आदि के लिए तीसरे स्थल का नहीं। वहां यह कहा गया है कि – कीड़े / मकोड़े आदि भी उसी मार्ग से लौटते हैं जिस मार्ग से मनुष्य।

( विशेष– 1: ड्यूशन महोदय (फिलासफी आव द उपनिषद्, पृ0: 318 ) में लिखा है कि – ऋग्वेद (10/88/15) में उल्लिखित दो मार्ग – दिन और रात्रि के द्योतक हैं, किन्तु बात वास्तव में ऐसी नहीं है। ऋग्वेद (10/88/15) में वर्णित दोनों मार्ग – देवयान और

पितृयान हैं न कि दिन और रात्रि, जैसा कि ड्यूशन महोदय ने लिखा है। – 'शतपथ ब्राह्मण (12/8/1/21 और 1/9/3/1–2)।

विशेष– 2: अथर्ववेद (15/12/5) ने भी देवयान और पितृयान मार्गों का उल्लेख किया है।)

कठोपनिषद् (5/6–7) में नचिकेता को यम ने 'ब्रह्मविद्या' का रहस्य बताया है और यह भी बताया है कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है – कुछ लोग दैहिक – अस्तित्व के लिए माता के गर्भाशय में चले जाते हैं और अन्य लोग अपने कर्मों और विद्या के अनुसार वृक्षों की थून्हियों में परिवर्तित हो जाते हैं।

बृ0 उप0 (6/2/15–16) और छा0 प0 (5/3/10 आदि) में देवयान और पितृयान से जाने वाले लोगों का सांकेतिक उल्लेख निम्नक्रम में है –

'ऐसे लोग जो (गृहस्थ आदि भी) इसे (पंचाग्निविद्या) जानते हैं और वे लोग (आश्रमवासी और सन्यासी आदि) वन में श्रद्धा के साथ सत्य (ब्रह्म/हिरण्यगर्भ ) की उपासना करते हैं – अर्चि (प्रकाश) को जाते हैं, अर्चि से दिन (अहन्) को, दिन से पूर्ण होते हुए पक्ष (शुक्लपक्ष) को, आपूर्वमाणपक्ष (पूर्ण होते हुए पक्ष) से छह मासों में जाते हैं, जिस अवधि में सूर्य उत्तर में गतिशील हो जाता है । उन छह मासों से देवलोक में जाते हैं, देवलोक से सूर्य को जाते हैं और सूर्य से विद्युत को जाते हैं। जब वे विद्युत के स्थल को पहुंच जाते हैं तो (ब्रह्मा) के मन से उत्पन्न पुरुष उनके पास आता है और उन्हें ब्रह्मा के लोकों को ले जाता है, इन लोकों में उच्च पद प्राप्त करके वे युगों तक रहते हैं और उनके लिए (संसार में पुनः) लौटना नहीं होता।

किन्तु वे लोग जो यज्ञ, दान और तप द्वारा लोकों पर विजय प्राप्त करते हैं, धूम (मार्ग) को जाते हैं, धूम से रात्रि को, रात्रि से कृष्णपक्ष को, कृष्णपक्ष से छह मासों को जाते हैं जिनमें सूर्य दक्षिणायन होता है, इन मासों से पितरों के लोक में जाते है। पितृलोक से चन्द्रलोक को जाते हैं और चन्द्र तक पहुंच जाने पर वे अन्न हो जाते हैं और तब देवगण उन्हें उसी प्रकार खाते हैं जिस प्रकार यज्ञ करने वाले राजा सोम को खाते हैं। किन्तु जब यह (पृथिवी पर किए गये कर्मों का फल) समाप्त हो जाता है, वे आकाश की ओर जाते हैं, आकाश से वायु, वायु से वर्षा और वर्षा से पृथिवी पर चले आते हैं, पृथिवी पर पहुंचने पर वे अन्न (भोजन) हो जाते है। तब वे पुनः अग्नि में, जो मनुष्य कहलाते हैं, डाले जाते हैं। इससे (मनुष्य से) वे अग्नि में जो नारी कहलाती है, जन्म लेते हैं। वे लोग लोकों की प्राप्ति के लिए (यज्ञ आदि द्वारा) उद्योग करते हुए इस लोक में बार – बार आते हैं। वे लोग जो इन दोनों मार्गों से अपरिचित हैं वे लोग 'कीटों, पतंगों, पक्षियों और मक्खियों के रूप में जन्म लेते हैं।'

छा0 उप0 (5/10/7–8) में यह भी आया है कि – 'जिसके आचरण सत्यपरक् और रमणीय रहे हैं वे शीघ्र ही रमणीय योनि प्राप्त करेंगे (यथा – ब्राह्मण योनि,

क्षत्रिय योनि या वैश्ययोनि आदि)। किन्तु जिनके आचरण गन्दे (बुरें) रहे हैं वे शीघ्र ही कपूस योनि प्राप्त करेंगे। (यथा – वचयोनि,सूकरयोनि या चाण्डालयोनि आदि)। जो इन दोनों में से किसी मार्ग का अनुसरण नहीं करते वे ऐसे क्षुद्र जीव बनते हैं जो सतत् लौटते आ रहे हैं। यह उनका तीसरा स्थल है – ' यहीं उनका जीना मरना होता है'।

(विशेष – भगवद्गीता (8/21–27) और शन्तिपर्व (26/8–10) में भी इन दोनों मार्गों का उल्लेख किया गया है लेकिन प्रायोगिक प्रामाणिकता के आधार पर इसे जीव के सापेक्ष में पूर्णत ऋतयुक्त नहीं माना जा सकता।)

वेदान्त सूत्र ने बहुधा 'पुनर्जन्म' के सिद्धान्त की ओर संकेत किया है। वे0 सू0 (2/1/34–36) के निम्न तीन सूत्र 'पुनर्जन्म' के सिद्धान्त के विषय में अति महत्वपूर्ण हैं–

'यह कहना कि ईश्वर संसार का कारण है, युक्तिसंगत नहीं लगता, क्योकि यदि ऐसा होता है तो ईश्वर पर व्यवहार – वैषम्य और अत्याचार का महाभियोग लग जायेगा। वे कुछ ऐसे लोगों को उत्पन्न करते हैं जो (देवों आदि की भांति) अत्यन्त आनन्द का उपभोग करते हैं। ऐसे लोगों को भी उत्पन्न करते हैं जो (मारवाही पशुओं की भांति) अत्यन्त क्लेशयुक्त जीवन बिताते हैं। उसी क्रम में कुछ ऐसे लोगों को उत्पन्न करते हैं जो बीच की स्थिति प्राप्त करते हैं – (यथा – आनन्द और क्लेश का मिश्रित अंश) । अतः ऐसे में ईश्वर पर यह अभियोग लगाया जा सकता है कि – वे द्वेष और प्रेम आदि की भावनाओं से युक्त है। ईश्वर भी क्लेश उत्पन्न करता है और उसी क्रम में सबको नष्ट कर देता है'।

उपरोक्त संशययुक्त विचारों का स्पष्टीकरण निम्न क्रम में दिया जा सकता है–

'यदि ईश्वर ने संसार में वैषम्य की रचना केवल अपने मन से की होती तथा किसी अन्य बात पर विचार न किया होता तो निःसन्देह उन पर असमान व्यवहार और अत्याचार के दो अभियोग लगाए जाते। किन्तु ईश्वर ने सदाचार नामक वृत्ति को भी दृष्टि में रखा है। ईश्वर की स्थिति को हम वर्षा की स्थिति से तुलना करके देख सकते हैं। वर्षा समान रूप से खेतों पर होती है किन्तु अंकुर समान रूप से नहीं निकलते – कोई छोटा होता है, कोई बड़ा होता है, कोई उत्तम होता है, कोई निकृष्ट – यह सब बीज की विशेषता पर निर्भर होता है। ईश्वर पशुओं, मनुष्यों और देवों की रचना का एक मात्र कारण है, जो विषमता दृष्टिगोचर हो रही है वह विभिन्न जीवों की अपनी – अपनी विशिष्ट वृत्तियां और शक्तियां है।'

आपस्तम्बधर्मसूत्र (2/1/2/2–3,5–6) में 'पुनर्जन्म' के सम्बन्ध में निम्न उल्लेख हैं–

'विभिन्न वर्गों के लोग अपने व्यवस्थित कर्मों के सम्पादन से सर्वोच्च और अपरिमित सुख का भोग करते हैं। (स्वर्ग में सुख भोगने के उपरान्त) कर्मफल शेष होने के कारण वे लौट आते हैं और यथोचित जाति (कुल), रूप, वर्ण, बुद्धि, प्रज्ञा और सम्पत्ति के

साथ जन्म लेते हैं, धर्मानुष्ठान का लाभ उठाते हैं और यह सब आनन्द में परिणत होता है जो चक्र के समान दोनों लोकों में होता है।

लगभग यही नियम दुष्कृत्य करने पर भी लागू होता है। सोने का चोर और ब्रह्महत्यारा अपनी जाति के अनुसार कुछ अवधि तक नर्क की यातनाएं सहकर कम से चाण्डाल, पौल्कस या वैण बनता है (जन्म पाता है)'। गौतमधर्मसूत्र (11/29–30) में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है।

(विषय – उपरोक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट नहीं हो पाता है कि – मनुष्य के मृत्यु के उपरान्त उसके आत्मा के आवागमन का मार्ग और उसके सापेक्ष में लोकों की व्यवस्था क्या और कैसी होगी। यथोचित प्रामाणिकता के अभाव में इससे यह भी तो निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि – यह सब मनुष्य को भयभीत करने के लिए तो नहीं कहा गया है।)

शंकर – भाष्य के कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष को निम्न कम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

'यह आत्मा (व्यक्ति का आत्मा) एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता हुआ सूक्ष्म तत्वों (भूत सूक्ष्म) के साथ अथवा उनसे घिरा हुआ चलता है'।

वेदान्त सूत्र (3/1/13–17) की व्याख्या में आया है कि – सभी मनुष्य चन्द्रलोक नहीं जाते, वहां केवल वही लोग जाते हैं, जो यज्ञ आदि करते हैं । जो लोग यज्ञों या जनकल्याण के कार्यों को नहीं सम्पादित करते हैं, वे दुष्कर्मों के दोषी हैं और नरक (जो वे0 सू0 – 3/1/15 के मत से सात हैं) की यातनाओं को भोगने के लिए यमलोक जाते हैं और उसके उपरान्त इस पृथिवी पर लौट आते हैं। जो श्रद्धा और तप के मार्ग का अनुसरण करते हैं वे देवयान मार्ग (छा0 उप0 – 5/10/1 और मुण्डक उप0 – 3/1/15) से जाते हैं, और जो यज्ञ, दान और जनकल्याण के कर्मों का सम्पादन करते हैं वे पितृयाण (छा0 उप0 – 5/10/8 और मुण्डक उप0 – 1/2/10) से जाते हैं। जो इन दोनों मार्गों में से किसी का अनुसरण नहीं करते हैं, वे तीसरे स्थल को जाते हैं और कीटों, पतंगों आदि के रूप में जन्म लेते हैं (छा0 उप0 – 5/10/8)।

वेदान्त में 'द्वैत और अद्वैतवाद' की बात की गयी है। उपनिषदों आदि में 'पुनर्जन्म' सम्बन्धी अधिकांश अवधारणा जो संसारावस्था या व्यावहारावस्था से सम्बन्धित है वह एक सीमा तक प्रामाणिक भी है। लेकिन अद्वैत (मुण्डक – 1/1/5–6 की परा विद्या या बृ0 उप0– 2/3/5–6 के अमूर्त ब्रह्म ) के सर्वोच्च आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विचार करने पर यह सब पूर्ण रूप से प्रामाणिक सिद्ध नहीं हो पाता है, जैसा कि उपनिषदों में। 'आत्मा परब्रह्म से अभिन्न है' – इस ऋत्तथ्य को भी पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

शंकराचार्य ने वेदान्त सूत्र (2/3/30) में इस बात पर जोर देकर अपनी व्याख्या में कहा है कि – 'जब तक यह आत्मा संसारी है और जब तक यह सम्यक दर्शन (पूर्ण

ज्ञान से) संसारिकता से दूर नहीं होता तब तक आत्मा और बुद्धि से सम्बन्ध (संयोग) नहीं टूट सकता। जब तक बुद्धि के साथ, आत्मा का यह सम्बन्ध चलता रहता है तब तक यह जीव संसारिकता से लिप्त बना रहता है। किन्तु सत्य तो यह है कि जीव की अपनी कोई सत्ता नहीं है, जो है, वह केवल बुद्धि की उपाधि से परिकल्पित सम्बन्ध मात्र है। क्योंकि उस सर्वज्ञ ईश्वर के अतिरिक्त, जिसका स्वरूप ही नित्य मुक्ति (स्वतन्त्रता) है, कोई अन्य बुद्धिमान धातु (द्रव्य या पदार्थ) दृष्टिगोचर नहीं होती'।

'पुनर्जम' का सिद्धान्त यह स्वीकार करता है कि – प्रत्येक जीवन पूर्व अस्तित्व या अस्तित्वों (जीवनों) के कर्मों का परिणाम या प्रतिफल है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि हम अतीत की ओर बढ़ें और बहुत दूर तक निकल जाये तो कोई अस्तित्व या जन्म प्रथम नहीं हो सकता। इसी से वेदान्त सूत्र (2/1/35) को यह घोषणा करनी पड़ी कि – 'संसार अनादि (आरम्भहीन) है'।

(विशेष – यदि 'ब्रम्हाण्ड'/ स्रष्टि' का आरम्भ नहीं होगा तो उसका अन्त कैसे होगा। 'द्वैत/अद्वैत' की पूरी मान्यताएं 'ब्रम्हाण्ड'/ स्रष्टि' के सापेक्ष में होगा न कि उसके निरपेक्ष में।

ऐसी विषम परिस्थिति में 'वेदान्त सूत्र' की तमाम मान्यताओं को लेकर यह कहना सार्थक लगता है कि – 'किसी भी विशिष्ट व्यक्ति को जहां तक दिखाई या सुनाई दे उसको पूर्णतः स्रष्टि का आधार या नियामक मान लिया जाय, क्या यह हर तरह से न्यायोचित या तर्कसंगत है। – यह सब हर विज्ञजन के लिए विचारणीय है। )

वैदिक सूत्र की उपरोक्त अवधारणा के प्रतिकार में कल्पों की व्यवस्था को प्रस्तुत किया गया है। कल्पों की अवधारणा के अनुसार – 'ब्रह्म द्वारा रचित विश्व एक कल्प तक चलता है, इसके उपरान्त वह ब्रह्म में विलीन हो जाता है। (शान्तिपर्व– 231/29–32 = 224/28–31– चित्रशाला संस्करण) ।

'शरीर या कर्म' में पहले किसकी उपस्थिति हुई, क्योंकि बिना कर्म के कोई शरीर नहीं और न ही बिना शरीर के कोई कर्म।

अनुशासनपर्व के प्रथम ध्याय में आया है कि – 'गौतमी को चित्त – संयम प्राप्त था। उसके पुत्र को एक सर्प ने काट लिया और वह मर गया। एक आखेटक (शिकारी) ने उस सर्प को बांध कर गौतमी के समक्ष रख दिया और कहा कि – मैं इस सर्प को मार डालूंगा क्योंकि इसने एक अबोध बच्चे को काट लिया है। इस पर गौतमी ने उसे मना करते हुए समझाया कि – सर्प को मारने से बच्चा लौटकर नहीं आ सकता।

इसके उपरान्त 'काल' वहां उपस्थित होकर समझाया कि– जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी के टुकड़े से जो चाहता है उसे बनाता है उसी प्रकार मनुष्य अपने द्वारा किए गये कर्मों का फल पाता है। इस बच्चे के मूल में इसके पूर्व जन्मों के कर्मों का प्रतिफल है।

इस तर्कसंगत सत्य को गौतमी ने स्वीकार किया और कहा कि – उसका पुत्र अपने अतीत जीवन के कर्मों के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ और इससे उसे जो शोक प्राप्त हुआ है वह उसके पूर्व जीवन के कर्मों का प्रतिफल है'। (विराटपर्व – 20/14, अनुशासनपर्व – 7/22 – पद्मपुराण – 2/81/47, आश्वमेधिकपर्व – 18/1, शान्तिपर्व – 316/25 और 35 = चित्रशाला सं0 329/25, 35)।

वर्तमान जीवन की कतिपय समस्याओं पर 'पुनर्जन्म' के सिद्धान्त से विविध संकेत मिलता है। इसे निम्नक्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1.दो अनजान व्यक्ति जब कभी एक दूसरे से मिलते हैं तो उनमें मित्रता या बैर की भावना अनायास क्यों विकसित होने लगती है?

2. कुछ लोग बिना किसी योग्यता के आनन्दोपयोग करते हैं और कुछ ऐसे लोग, जो सभी प्रकार से योग्य हैं या जिन्होंने त्याग और तपस्या का जीवन बिताया है, बड़े कष्ट में रहते हैं । ऐसा क्यों?

3. विश्व में व्याप्त विषमता को देखकर मनुष्य विकल हो उठता है। वहीं जब उसकी न्याय प्रिय भावना और सुन्दर व्यवहार करने की क्षमता पर बार – बार धक्का लगता है तो वह विकल हो उठता है। ऐसा क्यों?

उपरोक्त बिन्दुओं का समाधान, पूर्व जन्मों के कर्मों के आधार पर एक सीमा तक किया जा सकता है। यदि हम पूर्व जन्म और उसमें किये गये सत्कर्म और दुष्कर्म को नकार देंगे तो उपरोक्त प्रश्नयुक्त जिज्ञाशा निरंतर अनुत्तरित ही रहेगा।

विश्व में असद् वृत्तियों का राज्य क्यों है ? – इस बिन्दु पर भी हमें 'कर्म और पुनर्जन्म' के सिद्धान्त से प्रकाश प्राप्त होता है। इस क्रमिक क्रम में हम 'कर्म और पुनर्जन्म' के अस्तित्व को नकारने की स्थिति में दिशाविहीन हो सकते हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् (1/1) में मानव अस्तित्व को लेकर निम्न प्रश्न आये हैं –

1.'क्या ब्रह्म ही कारण है?

2.हम कहां से जन्म लेते हैं?

3.किसके द्वारा हम जीवित रहते हैं?

4.हम कहां जा रहे हैं?

5.किसके नियंत्रण के अन्तः में हम 'सुख – दुःख' की अनुभूति करते हैं?

6.क्या काल या स्वभाव या आवश्यकता या संयोग या तत्वों को हम कारण मानें या उसे जो पुरूष है ?

यह सब उनके एक साथ मिल जाने का भी परिणाम नहीं है क्योंकि स्वयं आत्मा को 'सुख और दुःख' पर अधिकार नहीं है'। तीसरे प्रश्न के उत्तर में आया है कि – 'वह अकेला ही इन कारणों (काल, आत्मा आदि) पर नियंत्रण रखता है'।

याज्ञ (1/350) ने इन वांछित और अवांछित परिणामों के कार्यों के कारणों के विषय में निम्न पांच मत रखे हैं – 'कुछ लोग दैव को, कुछ लोग स्वभाव को, कुछ लोग काल को, कुछ लोग पुरुषाकार (मानव उद्योग) और कुछ लोग इन सभी के सम्मिलित रूप को कारण मानते हैं'। लेकिन याज्ञ0 (1/349) का यह अपना मत है कि – अच्छे या बुरे परिणामों के कारण है दैव और पुरुषाकार, जिसमें प्रथम तो पूर्व जन्मों का परिणाम है और अब प्रतिफलित हो रहा है। इसी क्रम में 'शान्तिपर्व (238/4–5 = 230/4–5 चित्रशाला संस्करण), मत्स्यपुराण (221/8) और ब्रह्माण्डपुराण (2/8/61–62) आदि का मत है कि – 'दैव और स्वभाव' , 'दैव और काल' और 'दैव, पुरुषाकार और स्वभाव' आदि क्रमशः मिलकर कर्मों का फल उपस्थित करते हैं।

पद्मपुराण (2/81/48 और 94/118) में आया है कि – 'बिना कर्मफल भोगे कर्म का नाश नहीं होगा; अतीत जीवनों के कर्म से उत्पन्न बन्धन को कोई नहीं हटा सकता '। इसी क्रम में पुनः इस बात की पुनरावृत्ति हुई है कि – ' मनुष्य अपने कर्मों द्वारा देवता बन सकता है, या मानव बन सकता है, या पशु – पक्षी या क्षुद्र जीव या स्थावर (वृक्ष या पाषाण खण्ड) बन सकता है। अपनी शक्ति या सन्तान के उत्पत्ति से कोई व्यक्ति पूर्व जन्मों में किए गये कर्मों के प्रभावों को दूर नहीं कर सकता है'।

( विशेष – 1:यदि सब कुछ पहले से निश्चित है तो व्यक्ति को धार्मिक कृत्य (अनुष्ठान, पुरश्चरण, यज्ञ और महायज्ञ आदि) और जीवन रक्षा के लिए विविध भौतिक संसाधनों (चिकित्सा और सुरक्षा हेतु वर्तमान व्यवस्था आदि) की क्या आवश्यकता है। हम इस बात का प्रतिकार नहीं करते हैं कि – व्यक्ति को वर्तमान में 'पूर्वजन्मों' में किये गये असाधुकृत्य या साधुकृत्यों द्वारा संचित फलों को 'दुःख – सुख' के रूप में भोगना पड़ेगा। लेकिन इसके साथ – साथ यह भी तथ्यपरक् सच है कि – वर्तमान जीवन के साधुकर्मों के आधिक्य से पूर्वजन्मों के असाधुकृत्यों का प्रतिफल अल्प या अल्पतम् हो सकता है।

विशेष – 2: अतिप्राचीन उपनिषदों के निम्न दो सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं –

1.जीवात्मा और परब्रह्म की अभिन्नता।

2.व्यक्ति के कर्तव्यों और आचरण पर आत्मा के आवागमन (पुर्नजन्म) का रस्ता निर्भर होगा।

उपरोक्त दोनों सिद्धान्तों को याज्ञवल्क्य ने राजा जनक को बताया है (बृ0 उप0 – 4/4/4–7)। इसी क्रम श्रृंखला में उन्होने अपनी पत्नी मैत्रेयी से आत्मा और तत्वों आदि का ब्रह्म से तादामय बताया है (बृ0 उप0 2/4/–14)।

विशेष – 3: उपरोक्त कर्मों के अन्तर्गत, यदि सत्कर्म और दुष्कर्मों के मध्य कोई न कोई सेतुबन्ध बन जाये तो विविध कर्मफलों को भी व्यक्ति द्वारा भोगने का क्रम कम ज्यादा हो सकता है।)

उपनिषद् सिद्धान्त यह है कि व्यक्ति को अच्छे या बुरे कर्मों का फल अवश्य भोगना चाहिए। गौतमधर्मसूत्र में विविध पापों के शमन के सम्बन्ध में प्रायिश्चतों को लेकर निम्न अवधारणा प्रस्तुत की गयी है –

1.पापों के शमन के लिए प्रायश्चित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि जब तक उनके फलों को व्यक्ति द्वारा भोग नहीं लिया जाता तब तक उनका नाश नहीं होता है।

2. प्रायश्चित किया जाना चाहिए क्योंकि इस विषय में वैदिक उक्ति निम्न क्रम में प्रस्तुत है–

'पुनःस्तोम' नामक यज्ञ करने के पश्चात् व्यक्ति सोम यज्ञ करने के योग्य हो सकता है । व्रात्यस्तोम करने के पश्चात् व्यक्ति वैदिक यज्ञों के सम्पादन के योग्य हो जाता है; जो अश्वमेध यज्ञ करता है वह सभी पापों, यहां तक कि 'ब्रह्हत्या' को भी लाघ जाता है।

'मनु (12/54–69) और याज्ञ0 (3/206–8) ने व्यक्ति द्वारा किए गये दुष्कृत्यों (महापातक सम्बन्धी) को भोगने को लेकर निम्न अवधारणा प्रस्तुत की है –

1.ब्रह्महत्यारा – कुत्ता, सूअर, गधा, ऊंट, कौआ, बैल, बकरी, भेंड़, हरिण, पक्षी, चाण्डाल, पुक्कस के जन्मों को पाता है।

2.सुरा पीने वाला ब्राह्ण – कीटों, मकोड़ों, पतंगों, मल खाने वाले पक्षियों, मांसभक्षी पशुओं के विभिन्न जन्मों को पाता है।

3. ब्राह्मण के सोने की चोरी करने वाला ब्राहमण – मकोड़ों, सर्पों, छिपकलियों, जलचरों, नाशक निशाचरों की योनियों में सहस्रों बार जन्म लेता है।

4. गुरु के पर्यक को अपवित्र करने वाला व्यक्ति – घासों, गुल्मों, लताओं, मांसभक्षी पशुओं, फणिधरों तथा व्याघ्र जैसे क्रूर पशुओं की योनियों में सैकड़ों बार जन्म लेता है।

5. जो व्यक्ति लोगों को मारा – पीटा करते हैं वे कच्चा मांस खाने वाले की योनि में जन्म लेते हैं।

6. जो व्यक्ति निषिद्ध भोजन करते हैं वे कीट होते हैं।

7. जो चोरी करते हैं वे ऐसे जीव बनते हैं जो अपनी जाति के जीवों को खा डालते हैं।

8. जो लोग हीन जाति के नारियों से सम्भोग करते हैं वे प्रेत होते हैं।

9. जो व्यक्ति बहिष्कृत लोगों के साथ कुछ विशिष्ट अवधि तक रह लेता है, जो दूसरों की पत्नियों के साथ सम्भोग करता है, जो ब्राह्मण की सम्पत्ति को छीन लेता है वह ब्रह्मराच्छस होता है।

10. जो व्यक्ति लोभवश – रत्नों, मोतियों, मूंगों या किसी अन्य प्रकार के बहुमूल्य पत्थरों को चुराता है वह स्वर्णकारों के बीच जन्मता है।

11. अन्न चुराने पर ब्राह्मण चूहा होता है।

12. कांसा चुराने पर व्यक्ति हंस पक्षी होता है।

13. दूसरों को जल से वंचित करने पर व्यक्ति प्लव नामक पक्षी होता है।

14. मधु चुराने पर डंक मारने वाला जीव होता है।

15. मीठा रस (गन्ना) चुराने पर कुत्ता होता है।

16. मांस चुराने पर चील होता है।

17. तेल चुराने वाला व्यक्ति तेलचट्टा कीड़ा होता है।

18. नमक चुराने पर व्यक्ति झिल्ली जीव तथा दही चुराने पर व्यक्ति बगला पक्षी होता है।

19. रेशम, सन–वस्त्र, कपास –वस्त्र चुराने पर व्यक्ति क्रम से तीतर, मेढक और क्रोंच पक्षी का जन्म लेता है।

20. गौ चुराने पर व्यक्ति गोधा, चोटा चुराने पर व्यक्ति चमगादड़ पक्षी, सुगंध चुराने पर छछूंदर, पत्तियों वाले शाक चुराने पर मोर, भांति भांति के पकवान चुराने पर साही तथा बिना पका हुआ भोजन चुराने पर शल्य (झाड़ी में रहने वाला विशेष जीव) का जन्म पाता है।

21.अग्नि चुराने पर बगला, बर्तनों को चुराने पर हाड़ा, रंगीन वस्त्र चुराने पर चक्रवाक पक्षी, हिरण या हाथी चुराने पर भेड़िया, घोड़ा चुराने पर बाघ, फलों या कन्दमूलों को चुराने पर बन्दर, नारी चुराने पर भालू, पीने वाला पानी चुराने पर चातक का जन्म व्यक्ति पाता है।

22. सवारी गाड़ी चुराने पर ऊंट, पालतु पशु चुराने पर व्यक्ति को बकरा का जन्म प्राप्त होता है।

(विशेष – मनु और याज्ञ0 ने मृत्यु के बाद के जीवन में जो निम्न और निम्नतर योनियों का उल्लेख व्यक्ति के विविध कर्मों के आधार पर किया है वह सब प्रायोगिक दृष्टि से सम्भव नहीं है। क्योंकि कर्मों से व्यक्ति 'सुख – दुःख' के अर्न्तगत स्वर्गिक या नारकीय जीवन का अनुभव तो कर सकता है लेकिन सामान्य क्रम में उन सबकी योनि बदल जाये, यह 'जन्म,मृत्यु और जन्म' के क्रम में सरल नहीं है यानि अत्यन्त कठिन है।

हो सकता है इन दोनों महान विभूतियो ( मनु और याज्ञ0 ) ने वर्तमान समाज को इससे डराकर सामाजिक संतुलन बनाने का कार्य किया हो।

'मृत्यु के बाद का जीवन' की क्रमिक श्रृंखला में हमने 'अज्ञानाश्रय' के 'शक्ति संग्रहालय' के माध्यम से हजारों – हजारों मृतात्माओं के सूक्ष्मों का आध्यात्मिक/तान्त्रिक अध्ययन 'जन्म,मृत्यु और जन्म' के क्रम में करते हुए यह प्रायोगिक क्रम में पाया है कि व्यक्ति के पूर्व कर्मों के आधार पर 'पुनर्जन्म' में बिलम्ब तो हो सकता है लेकिन योनि बदल जाये यह सब हजारों सूक्ष्मों में किसी एकाध सूक्ष्म के साथ होता है लेकिन वह भी सरलता से नहीं। इस विषय पर आगामिक श्रृंखला में विस्तार से चर्चा करेंगे।)

प्रायश्चितों के सिद्धान्त द्वारा उपनिषदों में वर्णित कर्म सिद्धान्त ढीला कर दिया गया तो आरम्भिक कालों में भी पापों के परिणामों को दूर करने के लिए अनेक प्रायश्चित मार्ग व्यवस्थित हो गये। गौतम ने अपराधपूर्ण कर्मों के प्रभावों के शमन के लिए निम्न पांच साधन बताएं हैं– 'जप, तप, होम, उपवास और दान आदि'।

मनु (12/227 और 230) ने पापों और अपराधों के शमन के लिए निम्न व्यवस्था दी है –

'कोई भी पापी लोगों के समक्ष पाप निवेदन करने से, अनुताप करने से, तपों द्वारा, वैदिक वचनों के जप द्वारा तथा दान द्वारा पाप के प्रतिफलों से मुक्त हो सकता है। व्यक्ति पाप करने के उपरान्त 'अनुताप' करने से पापमुक्त हो जाता है और जब 'मैं ऐसा अब कभी नहीं करूंगा' इस प्रकार प्रतिज्ञा करता है तो वह पवित्र हो जाता है।

विष्णुपुराण (2/6/40) में आया है कि – यदि पाप करने के उपरान्त व्यक्ति अनुताप (पश्चाताप) करता है तो सबसे बड़ा प्रायश्चित है – हरिस्मरण।

स्काटलैण्ड के पादरी मैकनिकोल कृत 'इण्डियन थीइज्म, पृ0 223' में आया है कि – 'हिन्दुओं के कर्म सिद्धान्त में 'अनुताप' को कोई स्थान नहीं है, सर्वथा असत्य और भ्रामक है।

(विशेष – प्रायश्चित (अनुताप) से व्यक्ति को हल्के पापों से तो मुक्ति मल सकती है लेकिन 'महापातकीय' पापों से मुक्ति मिलना असम्भव सा है।)

कर्म का सिद्धान्त, इस बात का स्पष्ट संकेत देता है कि– 'एक व्यक्ति के अच्छे या बुरे कर्म दूसरे व्यक्ति में स्थानान्तरित नहीं हो सकते और न कोई व्यक्ति किसी अन्य के पापों को भोग सकता है। लेकिन ऋग्वेद में इसके विपरीत उल्लेख कहीं कहीं पर मिलता है। (यथा – ऋग्वेद में वशिष्ठ वरुण से निवेदन करते हैं – 'हम लोगों से हमारे पिताओं के उलंघनों को दूर कर दीजिए और उन सबको भी जो हमने स्वयं अपने शरीर में किए हैं। हम लोग अन्य लोगों द्वारा किए गए पापों से दुःखी न हों और न हम लोग वह करें जिसके लिए आप दण्डित करते हैं'।)

शान्तिपर्व (279/15 और 21 = 290/16 और 22, चित्रशाला संस्करण) में आया है कि – 'आंख, मन, वचन और कर्म से व्यक्ति जो कुछ करता है, वह वैसा ही फल पाता है। दूसरों द्वारा किए गये अच्छे या बुरे कर्मों के फल को अन्य व्यक्ति नहीं भोगता, व्यक्ति वही पाता है जो सवयं करता है। शान्तिपर्व (153/38 और 41)' ।

(विशेष – सामान्य क्रम में यह कहा जाता है कि व्यक्ति अपने पूर्व जन्मों के संचित अच्छे और बुरे कर्मों के प्रतिफल को वर्तमान जन्मों में भोगता है। इसके साथ – साथ एक दूसरे के कर्मों के फल को भोगने में जो मतभेद है उसे निम्न क्रम में पारिभाषित किया जा सकता है –

1.यदि पूर्व जन्मों के अच्छे बुरे कर्मों के प्रतिफल को वर्तमान में भोगने की बात सही है तो मृतात्माओं को हजारों / लाखों योनियों में भ्रमण करके पुनः जन्म लेने की क्या आवश्यकता है। 'जन्म,मृत्यु और जन्म' की चक्रीय प्रक्रिया में मुस्लिम देशों की तरह 'जैसे को तैसा' वाला सिद्धान्त नहीं चला करता हैं। हां, यह कुछ अंश तक संभव है कि – अच्छे/बुरे कर्मों के अन्तर के अवशेष जो बच जाते हैं उसे उस जीव को वर्तमान जीवन में भोगना पड़ सकता है।

2. जहां तक पूर्व जन्मों के अच्छे/बुरे कर्मों के सामूहिक क्रम को हजारो/लाखों योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त वर्तमान जीवन में भोगने की बात है वह 'पिता/पुत्र',"पति/पत्नि' या 'रक्त/अंगदान' करने वाले व्यक्तियों के मध्य हो सकता है। )

'अध्यात्म/तन्त्र' के प्रायोगिक ज्ञान के अभाव में कतिपय विद्वानों ने 'कर्म और पुनर्जन्म' के सिद्धान्त से हटकर जो बातें कही हैं वह सब निम्न क्रम में यथावत् प्रस्तुत है–

1. प्रिंगिल पैटिसन का (आइडिया आव इम्मोंटैलिटी, आक्सफोर्ड, 1922), पूर्व जीवन की कोई स्मृति नहीं होती, बिना स्मरण के अमरता व्यर्थ है। ऐसा ही विरोध 'मिस लिली डूगल ' और 'कैनन स्ट्रीटर आदि ने भी उपस्थित किया है।

( विशेष – वर्तमान जीवन में भी बृद्धावस्था में व्यक्ति अपने पौत्रों के नाम तक ठीक से स्मरण नहीं कर पाते हैं। यही नही, व्यक्ति ने अपने विगत दस वर्ष में क्या – क्या किया, स्मरण नहीं कर पाता। यह भी सच है कि यदि हमें अतीत की बाते याद आने लगे तो हमारा मन व्यामोह में पड़ जायेगा।

कर्म गुरुत्वाकर्षण के नियम के समान एक सार्वभौम कानून है, जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। )

2. एक विरोध है, जिसका सम्बन्ध है अनुवांशिकता (वंशानुक्रम) से। माता – पिता और संतानों में दैहिक और मानसिक समानरूपता पायी जाती है। इस बात का उत्तर हम कैसे दे सकते हैं?

( विशेष – आत्मा, जिसे जन्म लेना रहता है, अपनी स्थिति के अनुकूल माता – पिता की संतान होता है। किन्तु बच्चे अपने माता – पिता के सर्वथा अनुरूप नहीं होते। उनमें व्यक्तिगत् अन्तर तो पाया जाता है। सामान्यतः कर्म यह स्पष्ट नहीं कर पाता कि व्यक्ति माता – पिता से क्या प्राप्त करना चाहता है किन्तु इतना तो बता पाता है कि व्यक्ति अपने पूर्व जीवन से क्या प्राप्त करता है।)

3. एक विरोध यह है कि – इस 'कर्म और पुनर्जन्म' के सिद्धान्त में विश्वास करने से लोग मानवीय दुःख के प्रति निर्मम हो जायेंगे और किसी दुखित व्यक्ति को सहायता देना नहीं चाहेंगे। बल्कि यह सोचेंगे कि – दुःख तो पूर्व जन्मों का फल है और उस दुखित व्यक्ति को इस प्रकार का दुःख तो भोगना ही चाहिए।

( विशेष –उपरोक्त विरोधी अवधारणा को निम्न क्रम में मानवपयोगी बनाया जा सकता है–

1.ऋग्वेद (10/117/6) में आया है – 'जो व्यक्ति केवल अपने लिए भोजन पकाता है और स्वयं उसे खा लेता है वह पाप करता है।

2. बृ0 उप0 (5/2/3) ने सभी लोगों के लिए निम्न तीन कर्तव्य निर्धारित किए हैं– 'आत्म – संयम, दान और दया आदि' । यदि समर्थ व्यक्ति किसी की सहायता नहीं करता है तो वह कर्तव्यच्युत कहा जायेगा। इसी क्रम में यह भी सम्भव है कि – दुःख उठाने वाले व्यक्ति के कर्म का फल ही ऐसा रहा हो कि वह सहायता करने वाले का सहयोग पायेगा।)

3. एक अन्य विरोध निम्न क्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है – 'पृथिवी की जनसंख्या बढ़ती जा रही है, यह अतिरिक्त जीव कहां से आ रहे हैं?

( विशेष – कतिपय प्राणियों की जातियां लगभग समाप्त हो गयी हैं। जो लोग कर्म – सिद्धान्त में विश्वास करते हैं वह ऐसा कह सकते हैं कि – 'जो जीव अन्य योनियों में थे वे अब मानवों के स्वरूप में आ रहे हैं'। हो सकता है, उनके बुरे कर्म, जिसके फलस्वरूप वे निकृष्ट योनियों में विचरण कर रहे थे, वे अब नष्ट हो रहे हैं।)

'अन्त ही आरम्भ है' – इस अनवरत् क्रम में यह प्रस्तुत शोधपत्र 'मृत्यु के बाद का जीवन' – एक पृष्टिभूमि मात्र है। क्योंकि शोधपत्रों में विषय के फैलाव की एक सीमा होती है। उसी सीमा के अन्तर्गत, गम्भीर से गम्भीर विषय को यथासम्भव क्रम में विज्ञजनों और उससे जुड़े शोधार्थियों के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।

'मृत्यु के बाद का जीवन' के विस्तार में हो सकता है इस तरह के शोधपत्रों का क्रमिक क्रम लम्बे समय तक अनवरत् चलता रहे।

–क्रमशः